(MIJ) 2020, Vol. No. 6, Jan-Dec **e-ISSN: 2454-924X; p-ISSN: 2454-8103**

IGNORING THE HERITAGE OF FOLK CULTURE: THE DANGERS OF MARKETING AND THE CONSUMERIST APPROACH

Dr Mahesh Chandra Chaudhary

Associate Professor, Department of Hindi, Narayan College, Shikohabad

लोक संस्कृति की विरासत की उपेक्षा बाजारीकरण और उपभोक्तावादी दृष्टिकोण के खतरे

डॉ महेश चन्द्र चौधरी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

नारायण कॉलेज,शिकोहाबाद

भारतीय लोक संस्कृति के अन्तर्गत लोक–नृत्य एवं लोग गीतों की समृद्वता भारत के सर्वाधिक विकसित आधुनिक कलाकारों को भी प्रेरणा एवं वैभव प्रदान कर सकती है। सम्भवतः इसीलिए गणतंत्र दिवस पर भारत सरकार द्वारा आयोजित समारोह में लोक–नृत्य का एक नियमित कार्यक्रम समादृत किया जाता है। भारतीय जनजातीय समाज की प्रत्येक जनजाति में मौखिक साहित्य की प्रत्येक विधा का अत्यन्त विकसित, जीवनाभिमुख एवं परस्पर विरोधपूर्ण स्वरूप मिलता है। उनकी पौराणिक गाथाएँ एवं लोक कथाएँ उनके ज्ञान, अनुभव, अनुराग एवं विराग की संवाहक हैं। किन्तु आज हम देखते हैं कि भारत में लोक संस्कृति की उपेक्षा हो रही है। व्यंग्यकार शरद जोशी लोक संस्कृति के ह्रास से दुःखी दिखाई पड़ते हैं। साथ ही वर्तमान सांस्कृतिक नृत्य,

संगीत, कला आदि सभी कुछ अनेक वाह्य आडम्बरों एवं दिखावे से युक्त है। यह आज की छिछोड़ी संस्कृति के प्रतीक हैं।

लोक संस्कृति के सम्बन्ध में डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर लिखते हैं –''किसी भी देश की संस्कृति जिसे लोक संस्कृति कहते हैं – उन असभ्य और अशिक्षित समझे जाने वाले मनुष्यों के प्राणों का स्पन्दन होती है जो वहाँ की जनसंख्या का विशाल अंग होते हैं। इन्हीं तथाकथित अशिक्षितों और असभ्यों के सामाजिक जीवन के विविध पहलू, सामूहिक और पारिवारिक जीवन के बहुरंगी चित्र, अपनी अटूट परम्परा के कारण उन तत्वों का रूप धारण कर लेते हैं, जिन्हें लोक तत्व कहा जाता है और जिनके योग से लोक–संस्कृति का निर्माण होता है।''[21]

परन्तु जोशी जी दुःखी हैं, क्योकि उनकी सोच में मानव पहले है। वे चाहते हैं कि लोक संस्कृति संरक्षित की जाये परन्तु सबसे पहले यह आवश्यक है कि देश का प्रत्येक आदमी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर ले। भोपाल में एक तरफ महोत्सवों का होना दूसरी तरफ भोपाल गैस काण्ड से पीड़ित जनता। शरद जोशी को सरकारी ऐययाशी पीड़ा पहुँचाती है। मानवता की पुजारी मदर टेरेसा का भी यही दुःख था। संस्कृति ने हमेशा एक खूबसूरत ढक्कन का काम किया था। मन्दिरों और महलों के बाहर आकर्षक मूर्तियाँ बनाने वाले पुराने चंदेल सत्ताधारियों से आज उत्सवों से लेकर भारत महोत्सव आयोजित कराने वालों तक नीतियाँ यही रही हैं। जहाँ हजारों लोग गैस दुर्घटना मेंमरे हों और आज भी हजारों झींख रहे हों, वहीं पर समारोह चाहिए। मरीज जब सोएँ, उनकी आँखों में सरकारी संस्कृति के दिवा सपने होने चाहिए।

''मदर टेरेसा अमेरिका में भारत महोत्सव नामक सरकारी ऐयाशी से पीड़ित हैं। भारत में नंगे–भूखे बच्चों की समस्या हो, इथियोपिया में लोग भूखे बैठे हों, तब रायट्रों को यह शोभा नहीं देता। वे नहीं जानती कि इस देश के पास बेचने को खुजराहों और खरीदने को टेक्नोलॉजी है। इसमें भूख और गरीबी की बातें असांस्कृतिक और अप्रासंगिक हैं, सत्ता की नजर में।...सरकारें मदर टेरेसा नहीं होतीं, जो केवल बीमार–भूखे बच्चों का ध्यान रखें। वे जीवित और मजा मारते लोगों के सहारे चलती हैं। उन्हें नर्तकियों का भी ध्यान रखना होता है। रतनचमेली को पैसा देते समय हम गैस कांड या घर की गरीबी भूल जाते हैं।''[22]

आज जिनकों कला के नाम पर थोड़ी सी भी समझ नहीं वे ट्रस्टी बन जाते हैं। आज आवश्यकता है लोगों में जागरूकता लाने की। सच्चाइयों को अनदेखा कर कला की

समझ पर होने वाले आयोजनों को मान्यता नहीं मिलनी चाहिए। आज लोक संस्कृति के नाम पर लाखों रुपये खर्च किये जाते हैं। ''पच्चीस–तीस दर्शक जुटाकर मीडिया में छा जाना ही उद्देश्य रह गया है। 'केवल ट्रस्टी के लिए ही नहीं, दर्शक बनने के लिए भी अशोक बाजपेयी के कला–विचार से सहमति और समर्पण आवश्यक है। इसीलिए भारत भवन के कार्यक्रम में कई बार दर्शकों की संख्या पन्द्रह–बीस से बढ़कर पच्चीस–छब्बीस तक हो जाती है। लाख–करोड़ रुपये खर्च कर कला इसी तरह अपना दायरा बढ़ाती है।''[23]

राजतंत्रीय और पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत विकसित संस्कृति जनविरोधी संस्कृति है। सभ्यता और संस्कृति अपनी दीर्घकालिकता में मानसिक दासता का कारण बनती हैं। आज राष्ट्रीय संस्कृति सर्वाधिक प्रासंगिक है। परन्तु आज लोक संस्कृति के नाम पर होनेवाले आयोजनों में विषय की गहराई पर चर्चा कम होती है, उसके स्थान पर सामान्य वार्तालाप को अधिक महत्व दिया जाता है। लोक संस्कृति के नाम पर बस भीड़ भर इक्ट्ठी होती है। ''उसके उपरान्त मैं अपना बटुआ सहलाते हुए दर्शकों के लिए पन्द्रह मिनट का इण्टरबल कर देता हूँ। इसमें वे कॉफी पीते या आइसक्रीम चाटते एक–दूसरे को मधुर 'हाऊ–डू–यू–डू' कर सकते हैं। परस्पर मुस्करा सकते हैं, इण्टरबल तक प्रस्तुत मेरी उच्च कला पर छोटे–मोटे कमेण्ट कर अपने कला–प्रेमी होने की हवा बाँध सकते हैं।''[24]

आज गाँव भी वास्तविकता से दूर हैं। गाँव में भी प्रचार–प्रसार की महिमा है। महानगरों में गाँव बिकता है जबकि गाँव में महानगर बिकता है। दुःख इस बात का है कि भारतीय संस्कृति की महान् उपलब्धियों और उज्जवल परम्पराओं के निष्ठावान् उपासक अब नहीं रहे। हम केवल मनोरंजन भर चाहते हैं। संस्कृति के नाम पर जो हो रहा है वह बस 'परिवर्तन' की मनोवृत्ति के अन्तर्गत किया जा रहा है। 'गाँव, कस्बा और आधुनिकता' नामक लेख में आज आदमी 'थ्रिल' की आकाँक्षा रखता है–

''गाँव बदल रहा है। महानगर की सारी स्टाइल, फैषन और संस्कृति ग्रहण कर रहा है। उस दिन तीन लड़कों से बातें हुई। उनमें दो घोड़ें पर बैठे थे और एक बैलगाड़ी चला रहा था। उन्होंने कहा कि वे रीअल लाइफ गुजारना चाहते हैं। वे घोड़े और बैलगाड़ियों पर यात्राएँ करना चाहते हैं।

'तुम्हें बैलगाड़ी चलाना कैसा लगता है ? 'मैने पूछा।

'बहुत अच्छा, बशर्ते सड़क खराब और ऊबड़खाबड़ हो। मगर आजकल दिन पर दिन सड़कें, खासकर गाँवों की सड़कें सुधर रही हैं। सीधी सपाट होती जा रही हैं और बैलगाड़ी चलाने का सारा थ्रिल खत्म होता जा रहा है।' उसने कहा।''[25]

'आपात कालीन पंचतंत्र' नामक लेख में छोटी–छोटी घटनाएँ हैं जो प्रतीकात्मक है। 'लोक संस्कृति' की आज उपेक्षा हो रही हे। आज के युग में जो सच्चे कलाकार हैं, वे उपेक्षित है, जो प्रचार–प्रसार कर अपने को महिमामण्डित कर लेते हैं, वे महान् बन जाते हैं। आज 'कला' के क्षेत्र में जो हो रहा है, उसे कोयल एवं गिद्ध के माध्यम से 'कला और प्रतिबद्धता' नामक निबन्ध में प्रकट करते हैं–

''कोयल आकाशवाणी पहुँची। स्वर परीक्षा के लिए वहाँ तीन गिद्ध बैठे हुए थे।

'क्या गाऊँ?' कोयल ने पूछा।

गिद्ध हंसे और बोले–'यह भी कोई पूछने की बात है। बीस–सूत्री कार्यक्रम पर लोकगीत सुनाओ। हमें सिर्फ यही सुनने–सुनाने के आदेश हैं।'

कोयल चली आई। आते हुए उसने देखा कि 'म्यूजिक रूम' संगीत कक्ष में कौओं का दल बीस–सूत्री कार्यक्रम पर कोरस रिकार्ड करवा रहा है।.....कोयल ने उसके बाद संगीत में अपना कैरियर बनाने का 'आइडिया' त्याग दिया और शादी करके ससुराल चली गई।''[26]

भारतीय संस्कृति की अपनी कुछ आधारभूत विशेषताएँ थी, जिनके कारण विश्व में सबसे पुरानी संस्कृति होते हुए भी आज भी वह गौरव के साथ संसार में जीवित है। जबकि दूसरी कितनी ही संस्कृतियाँ काल का ग्रास बन चुकी हैं, समय के गर्त में समा चुकी हैं। सत्य, प्रेम, अहिंसा, शान्ति, बन्धुत्व, परदुःखकातरता, उदारता, अध्यात्म, कर्मवाद, पुनर्जन्म आदि भारतीय संस्कृति के वह आधारभूत तत्व हैं जो हमें दूसरी संस्कृतियों में देखने को नहीं मिलते हैं। यद्यपि मुगलों के शासनकाल और अंग्रेजी शासनकाल में भी विदेशियों द्वारा भारतीय संस्कृति को समूल नष्ट करने का भरसक प्रयास किया गया, परन्तु विदेशियों की दमनकारी नीतियों के फलस्वरूप भी हमारी संस्कृति को उतना गहरा आघात कभी नहीं लगा, जितना कि स्वतन्त्रता के पश्चात् साठ वर्षों में लगा है। हमने भी अपनी संस्कृति के विनाश के लिये आज पूरी–पूरी तैयारी कर ली है। जीवन के वे आदर्श जो चिरकाल से हमारी संस्कृति को जीवित रखे हुए थे, आज हमारे ही हाथों उनकी हत्या हो गयी हैं। सत्य, अहिंसा और प्रेम

जीवन से दूर भागते जा रहे हैं। जीवन की मान्यताएँ पूर्णरूपेण मर चुकी हैं। सत्य को आज हर जगह सूली पर चढ़ाया जा रहा है। असत्य और अपमान का घूँट पीकर जीवित हैं, जबकि झूठ के आश्रय पर जीवन व्यतीत करने वाले सुख भोग और सम्मान के साथ अपना जीवन जी रहे हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की सांस्कृतिक स्थिति में तीव्रता से परिवर्तन हुआ। हर क्षेत्र में बुद्धिजीवी कटता गया। देश की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता में विश्वास रखने वाले किसी पक्ष ने सांस्कृतिक क्षेत्र में कुछ कर गुजरने की हिम्मत ही नहीं की। सांस्कृतिक जीवन के विघटन की प्रक्रिया देश के विभाजन से शुरू हुई और आज भी किसी न किसी रूप में यह जारी है। इस विघटन का केवल एक आयाम नहीं, अनेक आयाम हैं। सांस्कृतिक एकता के अभाव में देश निरन्तर टूटता जा रहा है। वर्गवाद और साम्प्रदायिकता की भावना ने टूटन की इस प्रक्रिया में विशेष सहयोग दिया है।

''तो यह स्थिति है मित्रो ! हम अपनी राष्ट्रीय समस्याओं के इलाज करवाने में अंधे, बहरे और मुँह से पोपले, बेदाँत होते जा रहे हैं। असल बात यह है कि हमारी कमीजें तंग हैं। देश, प्रांत, शहर, गाँव, जाति, धर्म, चिंतन, व्यवहार सभी स्तर पर हम तंग कमीजें पहने हैं। समस्याओं का निदान यह है कि हम कमीज थोड़ी ढीली रखें, शरीर को हवा लगने दें, सीना फुला सकें, खुलकर साँस ले सकें और बीमारियों से बचे।''.. ....[27]

.....''राष्ट्रीय नारा यह होना चाहिए कि बटन खोलो, कमीज ढीली रखो और जो हवा आ रही है, उसका फायदा लो।''[28]

आज संस्कृति वादों के सहारे चल रही है। पाँच सितारा होटल और एयरलाइंस की अपनी संस्कृति है। जैसा व्यापार वैसी संस्कृति। पाँच सितारा होटल, एयरलाइंस और यात्रियों को यहाँ से वहाँ पहुँचाने वाली एजेंसियों की अपनी संस्कृति होती है। वह होती है एक खास किस्म की और लगभग अन्तर्राष्ट्रीय, मगर हर देश उसे अपनी संस्कृति से जोड़ता है। एयरहोस्टेस थाइलैंड की हो, ब्रिटिश या भारतीय, विज्ञापनों में वह मुस्कराती मिलेगी। यह मुस्कान इस संस्कृति की आत्मा है। ''चूंकि संस्कृति एक है, अतः आज नहीं तो कल भारतीय यात्री भी अपने अधिकार की लड़ाई लड़ेंगे। हर एयरहोस्टेस की यह नियति हो जाएगी कि वह प्राणिमात्र को देख मुस्कराने लगे। हवाई जहाज में सब चढ़ते हैं। मुस्कराओ, जल्दी मुस्कराओ, हम सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं।''

(MIJ) 2020, Vol. No. 6, Jan-Dec **e-ISSN: 2454-924X; p-ISSN: 2454-8103**

आज हमारा देश सांस्कृतिक क्रान्ति करने के लिए उतावला दिख रहा है। जगह–जगह महोत्सव होते हैं, रंगमंच हैं,नाट्य अकादमी हैं, परन्तु सांस्कृतिक क्रान्ति के लिए संस्कृति का बाजारीकरण करना होगा। व्यंग्य नाटक 'एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ में सूत्रधार के माध्यम से कल्चर के प्रति जागरूक सरकार पर व्यंग्य करते हैं –

''तुम आना, मिलना हमसे, इन्शा अल्लाह अकादमी बना देंगे, कल्चर का अलग से डिपार्टमेंट खड़ा कर देंगे, तुम्हें फेलोशिप दे देंगे, क्या बात है ! और जरा सोचो उसमें लगता क्या है और जो भी लगे ! क्योंकि कोई बजह नहीं कि जब हम एक समझदार, नेक और रहमदिल नबाब के रूप में मशहूर होने पर तुले हैं तो कल्चर के मामले में पीछे क्यों रहें ? और इसके लिए अगर कुछ उल्लू के पट्ठों को इनाम, फेलोशिप बगैरा देनी पड़े तो देंगे, क्योंकि सवाल तो आखिर हमारे नेक, रहमदिल और कल्चर्ड लगने का है, वो जो भी हो।''[30]

हजारों वर्षों की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परम्परा में श्रद्धा एवं विश्वास रखने वाले व्यक्ति, यदि आज इस संकटपूर्ण परिस्थिति में जागरूक नहीं होंगे तो हमारी पुनीत, प्राचीन एवं नित नूतन संस्कृति हमारी मातृभूमि से सदा के लिए नष्ट हो जायेगी। आज के विज्ञापन भारतीय संस्कृति की धज्जियाँ उड़ाते जा रहे हैं। 'समस्याग्रस्त वर्तमान और 000 का बड़ा बट्टा' नामक लेख में साबुन के विज्ञापन के माध्यम से संस्कृति के बाजारीकरण पर चुटीलाव्यंग्य करते हैं। ''यह लम्बोतरे जूडे, बाँहों में झरने की तरह गिरते साड़ियों के पल्ले, नाव से कटे हुए ब्लाऊज, प्राचीन मूर्तियों से अपने सौन्दर्य का मिलान करने वाली पथरीली मुस्कान लिये चेहरे, स्पर्श के क्षेत्र में मिनी ऊँचाइयाँ, फूल की पाँखुरी की–सी स्नोजन्य कोमलता, शक्ति और तन्दुरुस्ती की विटामिन प्रेरणाएँ, सिगरेट से भरपूर कश, सर्वोत्तम सफ़ेदी, मनमोहक सुगन्ध से भरपूर तथा अनेक विशेषताओं से युक्त जो कुछ सर्वत्र प्रशंसित है, रंग जमा रहा है। मेहनत के बाद तसल्ली पूरी देता है – वह सभी कुछ विज्ञापनों के कारण है। माल बिके न बिके, त्वचा की कोमलता के वैयक्तिक आग्रहों को सामाजिक मान्यता मिल जाती है। माल उखड़ता है, मगर गुण स्थापित कर जाता है, जो माल को नये सिरे से निमन्त्रित करता है। यह क्रम चलता रहता है और देश सुन्दरता के सभ्य सांस्कृतिक सोपान चढ़ता रहता है।''

'वे कत्थक करने वाले' निबन्ध में कला के नाम पर होने वाले फूहड प्रदर्शन एवं धन बटोरने के धन्धे पर तीक्ष्ण एवं पैनी दृष्टि डाली हैं। उनकी पीड़ा है कि यह देश, जो

आजादी के इतने सालों बाद गरीब आदिवासी बच्चों को खेलने के लिए एक फुटवाल नहीं दे सका, इन कत्थक करने वालों के लिए कितना सुखदाई, आश्रयदाता साबित हुआ। जब देश में दिमाग से पैसा कमाने वालों में एक किस्म की शून्यता घिर आती है, जब रुपये से रुपया पैदा होना बन्द या कम हो जाता है, मेहनत बुझने लगती है, तब ये कत्थक वाले पैरों में पाँच किलो घुँघरू चढ़ा कर्मक्षेत्र में कूद पड़ते हैं। रात को कहाँ नाचना है, यह निश्चित करने के लिए सारे दिन परेशान रहने वाली इस जाति को रोज कोई मुरीद मिल जाता है। आजादी ने देश को नए रईसों की एक जमात दी है जो अपने को कलाप्रेमी और कला के मामले में समझदार लगाने के लिए हर प्रोग्राम में आगे की सीट के टिकट खरीदती हैं।

''कत्थक करने वाली या करने वाले मंच पर आते हैं। तबले वाला उनके साथ होता है, जो हालांकि अपने में अलग और स्वतन्त्र लगता है, मगर वह पूरे नाटक का जोरदार हिस्सेदार होता है। एक गुरू किस्म का आदमी होता है, जो मंच की एक तरफ बैठा यश में हिस्सेदारी करता है कि ये जो पैर पीटे जा रहे हैं, वह मेरी देन है। परस्पर टक्कर का दिखावा करने वाले इन धंधेबाजों की कला पर (यहाँ कला से तात्पर्य घुंघरू बाँध पैर पीटना है) आती–जाती रहती हैं। वे तालियाँ बजाते हैं। सफलता का यही सूचक है। दूसरे दिन एक निष्चित षब्दावली और अंदाज में कला–समीक्षक अखबारों में तारीफ कर देते हैं। कत्थक वाले नई शाम के लिए कोशिशों में जुट जाते हैं। देश का फ्राड जारी रहता है। उत्सवों की राशियाँ लुटती रहती हैं।''

हिन्दी व्यंग्यकारों ने कला को व्यापार बनाने की प्रवृत्ति पर भी ध्यान दिया है। शरद जोशी 'एक बेले की तैयारी में' इसी व्यावसायिकता पर तीक्ष्ण प्रहार करते हैं। वह खुजली और बाँक नृत्य जैसे कार्यक्रमों का आयोजन भी करते हैं। गाँव की संस्कृति को शहर में नग्नता के रूप में परोसने को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं –''कला के क्षेत्र में सबसे बड़ी ट्रिक है कि शहर में जाकर गाँव बेचिए। मैं इसी दिशा में सोच रहा हूँ। गाँव की महिलाओं के शरीर स्वस्थ होते हैं और देखने में सुन्दर। यदि एक मुट्ठी भर लड़कियाँ ग्रामीण वस्त्रों में मंच पर बिखेर दी जायें, तो शहर का दर्शक आँखें फाड़े उन्हें देखता रहता है, जब तक पर्दा न गिरे।'' कला के व्यवसायीकरण को खाद्य पदार्थों की संगति से उपमित करते हुए –'जिन्दगी को कुरेदती हुई कला' नामक रचना में लिखते हैं –''मूली, गाजार पर जरा गौर कीजिए। कहाँ से उखड़ती हैं और कहाँ जाकर जमती हैं। मटमैले–यथार्थ से डाइनिंग–टेबिल के सजावटी सलाद की ऊँचाइयों

तक उनकी जीवन–यात्रा कितनी कलामय है।'' गाँव की लोक–संस्कृति शहरी आवरण और घरों में सजाकर, तोड़–मरोड़कर कला के नाम पर तथाकथित सलीके से प्रस्तुत की जा रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सिद्धान्त कौमुदी, पृ. 417, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई*
2. *द्विवेदी हज़ारी प्रसाद, जनपद (त्रैमासिक पत्रिका) वर्ष–1, अंक–1 ;काशी : हिन्दू विश्वविद्यालय,अक्टूबर, 1952. पृ. 65.*
3. *अग्रवाल वासुदेव शरण, लोक का प्रत्यक्ष–दर्शन, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक (प्रयाग:हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सन् 1974). पृ. 67.*
4. *हिन्दी साहित्य कोष, भाग–1, सं. धीरेन्द्र वर्मा ;वाराणसी : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, दूसरा संस्करण, पृ. 689*
5. *वत्स महावीर, साठोरी कविता में सांस्कृतिक चेतना (दिल्ली : संजय प्रकाशन, 1996), पृ. 2.*
6. *वर्मा रामचन्द्र, हिन्दी मानक कोष, पृ. 801, 802.*
7. *ब्राउन एफ.जे. एजुकेशन सोशियालोजी ;न्यूयार्क : प्रेन्टिस हॉल, 1949, पृ. 63*
8. *टायलर एडर्वड बी, प्रिमिटिव कल्चर ;लंदन : जे मयूर, 1929, पृ. 1.*
9. *मोनियर विलियम एम.ए. संस्कृत–इंगलिश डिक्शनरी (आक्सफोर्ड : 1951), पृ. 1120.*
10. *द्विवेदी हज़ारी प्रसाद, अशोक के फूल ;इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1976, पृ. 75*
11. *हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण, पृ. 70.*
12. *'दिनकर' रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय ;दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, 1956, पृ. 653.*
13. *मानक हिन्दी कोष (चौथा खण्ड), सं. रामचन्द्र वर्मा ;प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1965. पृ.59*
14. *भाषा शब्द कोष (संपा) रामशंकर रसाल ;इलाहाबाद : रामनरायण लाल बेनी प्रसाद, 1974,पृ. 1477.*
15. *नालंदरा विशाल शब्दसागर, संपा, नवल जी ;देहली : फूलचन्द जैन, 1950, पृ. 1221, 1388.*

REFERENCES

1. Shiddhant Kaumudi, pg 417, Venkateshwar Press, Mumbai
2. Dwivedi Hazari Prasad, Janpad, (Quarterly Magazine) Year-1, No. 1; Kashi Hindu University, October, pg 65
3. Agarwal Vasudev Sharan, Lok ka Pratyaksh- Darshan, Conference Proceedings, Lok Sanskriti Issue (Prayag: Hindi Sahitya Sammelan, 1974) pg 67
4. Hindi Sahitya Kosh, Part 1, Dhirendra Verma, Varanasi, Gyanmandal Ltd. II Edition, pg 689
5. Vats Mahavir, Sathori Kavita me Sanskritik Chetna (Delhi: Sanjay Publication, 1996) pg 2
6. Verma Ramchandra, Hindi Manak Kosh, pg 801, 802
7. Brown J.F. Education Sociology, New York: Prentice Hall, 1949, pg 63
8. Taylor Edward B, Primitive Culture; London : J. Mayur, 1929, pg 1
9. Monnier William MA Sanskrit-English Dictionary (Oxford: 1951) pg 1120
10. Dwivedi Hazari Prasad, Ashok ke Phool; Allahabad: Lokbharti Publication, 1976, pg 75
11. Hindu Sanskriti Issue, Kalyan, pg 70
12. 'Dinkar' Ramdhari Singh, Sanskriti ke Char Adhyay; Delhi: Rajpal and Sons, 1956, pg 653
13. Manak Hindi Kosh (Part-IV), Ramchandra Verma; Prayag: Hindi Sahitya Sammelan, 1965, pg 59
14. Bhasha Shabd Kosh (Ed.) Ramshankar Rasal; Allahabad: Ramnarayan Lal Beni Prasad, 1974, pg 1477
15. Nalandara Vishal Shabdsagar, (Ed.) Nawal Ji; Delhi: Phoolchand Jain, 1950, pg 1221, 1388